स्वामी विवेकानन्द का राजनीतिक दर्शन

डॉ. (श्रीमती) मंजू आर्या *

सारांश

स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व काफी प्रभावशाली था। हिन्दू धर्म में उनकी विशेष आस्था थी। बचपन से ही उनमें आध्यात्मिक गुणों का विकास हो गया था। उन्होंने भारत के साथ–साथ देश–विदेश की भी यात्रा की। जिससे उन्हें लोगों के दुःखों व तकलीफों के बारे में ज्ञात हुआ। तब उन्होंने भारत की समस्याओं का समाधान ढूंढने का प्रयास किया। अपने व्यक्तित्व व विचारों से उन्होंने पश्चिमी देशों के विद्वानों को भी काफी प्रभावित किया। वे सभी धर्मों का सम्मान करते थे, लेकिन हिन्दू धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानते थे। उन्होंने हमेशा खुद को राजनीति से दूर रखा, लेकिन फिर भी उनके विचारों का राजनीति पर काफी प्रभाव पड़ा। उनके जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव रामकृष्ण परमहंस का पड़ा। वे रामकृष्ण के विशेष शिष्य थे। रामकृष्ण से मुलाकात के बाद उन्हें स्वामी विवेकानन्द के नाम से जाना जाने लगा।

संकेत शब्द :– विवेकानन्द, राजनीतिक दर्शन, रामकृष्ण परमहंस, सामाजिक बुराई, वेदान्त, सन्यासी दार्शनिक।

प्रस्तावना–

स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी, 1863 में कलकत्ता के एक प्रतिष्ठित और सम्पन्न परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त था, वे उच्च न्यायालय के वकील थे तथा संस्कृत, फारसी व कानून के ज्ञाता थे। विवेकानन्द की माता का नाम भुवनेश्वरी देवी था, उनकी धर्म में विशेष आस्था थी। इसी कारण विवेकानन्द में बचपन से ही करूणा, सहानुभूति, सात्विकता, आध्यात्म व ईश्वर भक्ति के गुणों का विकास हो गया था। वे तर्कशीलता और कुशाग्र बुद्धि के धनी थे। वे वेद, गीता व रामायण के साथ– साथ कांट, हीगल, डार्विन, मार्क्स व ह्यूम के दार्शनिक – सामाजिक सिद्धान्तों को भी अच्छी प्रकार से समझते थे। उन्होंने स्नातक की परीक्षा अच्छे अंकों से पास की। अपने पिता की मृत्यु के कारण वे आगे की पढ़ाई नहीं कर पाये। उनकी प्रतिभा से मिस्टर हेस्टी काफी प्रभावित हुए। उनका कहना था कि "विवेकानन्द वास्तव में अत्यन्त प्रतिभावान छात्र हैं। उन्होंने पश्चिमी विश्वविद्यालयों में उनके जैसा गुणी, परिश्रमी और गहन जिज्ञासु छात्र नहीं देखा था।"[1]

विवेकानन्द ने पश्चिमी साहित्य और चिन्तन का अध्ययन करने के साथ–साथ भारत की दार्शनिक व धार्मिक परम्पराओं का भी अध्ययन किया था। उनके जीवन पर रामकृष्ण परमहंस का सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ा। विवेकानन्द का असली नाम नरेन्द्र नाथ दत्त था। लेकिन रामकृष्ण परमहंस के शिष्य बनने के बाद वे स्वामी विवेकानन्द बन गये थे। इन दोनों की मुलाकात नवम्बर, 1881 में हुई। इसके बाद विवेकानन्द के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये। उन्होंने गुरू के आगे अपने को पूरी तरह समर्पित कर दिया था। अगस्त, 1886 में रामकृष्ण की मृत्यु हो गयी, उस समय विवेकानन्द उनके प्रमुख शिष्यों में से एक थे। केवल 24 वर्ष की उम्र में उन्होंने अपना सारा जीवन गुरू के संदेश के प्रचार – प्रसार में लगा दिया था। वे गृहस्थ जीवन को त्यागकर जंगलों में साधना करने चले गये। 6 वर्ष से अधिक समय तक कठोर संयमित जीवन व्यतीत किया। इसके बाद उन्हें शान्ति, संतुलन और निश्चय की प्राप्ति हुई, जो आगे के जीवन में उनके काम आया। उन्होंने परिव्राजक के रूप में पूरे भारत का भ्रमण किया, जिससे उन्हें लोगों की तकलीफों और कष्टों के बारे में जानकारी प्राप्त हुई।

विश्व के सामने भारत की आवाज को बुलन्द करने के लिए विवेकानन्द के हृदय में हलचल हो रही थी, उन्हें लगा कि भारत की समस्याओं के लिए समाधान ढूंढना चाहिए। इस काम के लिए उन्हें एक मौका मिला, वे 1893 में अमेरिका गये, वहां पर शिकागो में उनके द्वारा सर्वधर्म सम्मेलन पर एक भाषण दिया गया। उनका भाषण सुनकर हर कोई मुग्ध हो गया, इस भाषण में भारत की सार्वदेशिकता व विशाल हृदयता देखने को मिली। इस सम्मेलन में स्वामीजी ने जन समुदाय को 'अमेरिका निवासी भाई – बहनों' शब्दों से सम्बोधित किया। यह सम्बोधन वहां के लोगों के लिए अचम्भित करने वाला था। स्वामीजी के इन सरल शब्दों का इतना प्रभाव पड़ा कि अगले ही दिन समाचार – पत्रों में उन्हें उस सम्मेलन का सर्वश्रेष्ठ और महान व्यक्ति का दर्जा मिल गया।

विवेकानन्द अमेरिका में तीन वर्ष तक रहे। उन्होंने कई व्याख्यान दिये, वेदान्त समितियों की स्थापना की और नये – नये शिष्य बनाते रहे। इसके बाद वे इंग्लैण्ड गये, वहां पर भी उन्होंने वेदान्त पर कई व्याख्यान दिये। उनके विचारों को सुनकर उनके कई शिष्य बन गये।

* असि. प्रो., राजनीति विज्ञान विभाग, एल.एस.एम. रा. स्ना. महाविद्यालय, पिथौरागढ़

16 दिसम्बर, 1896 को विवेकानन्द भारत वापस आये और हिन्दू जाति के लोगों की अन्तरात्मा को जगाने, अंध–विश्वास, सामाजिक बुराई व कुप्रथा को समाप्त करने का प्रयत्न किया। उन्होंने 1897 में कलकत्ता के पास बैलूर में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। सैनफ्रांसिसको में शान्ति आश्रम और वेदान्त सोसायटी स्थापित की। 4 जुलाई, 1902 को उनका देहान्त हो गया। उस समय वे केवल 39 वर्ष के ही थे। इस अल्पकाल में अपने व्यक्तित्व व सक्रिय जीवन के लिए उनकी ख्याति देश – विदेश में आज भी फैली हुई है।

प्रो. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा ने विवेकानन्द के दर्शन के तीन स्रोतों का वर्णन किया है–

1. वेदों तथा वेदान्त की महान् परम्परा
2. रामकृष्ण के साथ सम्पर्क
3. उनके अपने जीवन का अनुभव

इन स्रोतों के द्वारा ही स्वामीजी के धार्मिक व दार्शनिक विचारों को प्रेरणा मिली। उनकी रचनाओं के मुख्य दार्शनिक अंश हैं–

1. ज्ञान योग
2. पातंजलि सूत्रों पर भाष्य
3. वेदान्त दर्शन पर दिये गये भाषण

स्वामीजी के राजनीतिक दर्शन का वर्णन इन रचनाओं में है–

1. कोलम्बो से अल्मोड़ा तक व्याख्यान
2. भारत और उसकी समस्याएं
3. आधुनिक भारत[2]

विवेकानन्द का मानववादी दर्शन–

विवेकानन्द एक सन्यासी दार्शनिक थे, इस कारण उनका सम्बन्ध परम सत्य व परम ब्रह्म से था। उनका मानना था कि परम ब्रह्म या परमात्मा की सेवा करने से ही आत्मा का कल्याण होता है। सवाल यह है कि परमात्मा की सेवा किस प्रकार करनी चाहिए। क्या विश्व से अलग होकर अकेले जंगल में या पर्वत की चोटी में समाधि लगाकर परमात्मा का ध्यान करने से वह मिल जायेंगे। उन्होंने परमात्मा की साधना करने की इस विधि को उचित नहीं माना और यह तर्क दिया कि विश्व के मानव समुदाय द्वारा ईश्वर के अस्तित्व का प्रतिनिधित्व किया जाता है। इसके द्वारा ही ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है। यदि ईश्वर की सेवा करनी है तो मानव की सेवा किया करो। दीन–हीन असहाय व पीड़ित मानव की सेवा ही ईश्वर की सच्ची सेवा हो सकती है।

विवेकानन्द के अनुसार मनुष्यों के दुःख व कष्ट का एक प्रमुख कारण समाज में प्रचलित कुप्रथाएं थीं, जो एक निश्चित उद्देश्य के लिए बनायी गयी थीं, लेकिन अब उनका महत्व नहीं है। हिन्दू धर्म में वर्ण–व्यवस्था या जाति प्रथा ऐसी ही एक कुप्रथा है। जिसे इतना कठोर बना दिया गया है कि इसके नाम पर बहुत से अत्याचार होते रहते हैं। विवेकानन्द ने जाति प्रथा के कड़े नियमों को उदार बनाने की बात की और अस्पृश्यता की कड़ी आलोचना की। उन्होंने ब्राह्मणों के अधिकारवाद की निन्दा करते हुए शूद्रों को आध्यात्मिक ज्ञान से वंचित रखने की कड़ी आलोचना की। उन्होंने आध्यात्मिक समानता का समर्थन किया और तर्क दिया कि परम सत्य का ज्ञान सभी को प्राप्त करने का अवसर मिलना चाहिए, तभी दासता के बंधन समाप्त होंगे व समस्त विश्व का कल्याण होगा। वे जानते थे कि वर्ण–व्यवस्था को तुरन्त व पूरी तरह से समाप्त नहीं किया जा सकता, परन्तु इसमें सुधार करना अत्यन्त आवश्यक है। उनकी मांग थी कि समानता लाने के लिए शोषित वर्गों को शिक्षा के अवसर प्रदान करने होंगे।

उनका यह विचार था कि ऐतिहासिक विकास के अनुसार सभी वर्णों की मानव जाति पर राज करने की बारी क्रम से आती है। ज्ञान विज्ञान का विकास ब्राह्मणों के राज में होता है। शौर्य व पराक्रम का सम्मान क्षत्रियों के राज में होता है, परन्तु इनके राज में आम जनता का उत्पीड़न भी होता है। धन–सम्पदा की बढ़ोत्तरी वैश्यों के राज में होती है। अब मानव समाज पर राज करने की बारी शूद्र व शोषित वर्ग की है। इनके राज में भौतिक सामग्री का वितरण समान रूप से होगा, परन्तु सभ्यता के स्तर में कमी आयेगी। साधारण शिक्षा का काफी विकास होगा, लेकिन असाधारण प्रतिभाएं दुर्लभ हो जायेंगी। एक आदर्श राज्य तब बनेगा, जब ब्राह्मण युग के ज्ञान, क्षत्रिय युग के शौर्य व पराक्रम, वैश्य युग की धन–सम्पदा और शूद्र युग की समानता में संतुलन स्थापित होगा।

1886 में विवेकानन्द अपने गुरू रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के बाद भारत के भ्रमण के लिए चले गये। भ्रमण के दौरान उन्होंने भारत के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक जीवन को काफी नजदीक से देखा था। इसके बाद उन्हें यह लगा कि भारत आध्यात्मिक व सांस्कृतिक रूप से काफी समृद्धशाली देश है, किन्तु गरीबी, सामाजिक व धार्मिक बुराईयों के कारण यहां के लोग पीड़ित हैं। उन्होंने प्राचीन समय से चली आ रही कुरीतियों का खण्डन किया। भारत के सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक जीवन का विवेकानन्द के दर्शन पर काफी प्रभाव पड़ा। उनका विचार था कि भारतीय धर्म व संस्कृति को सदियों पुरानी रूढ़िवादिता व अंधविश्वास ने जकड़ रखा है। जिससे आध्यात्मिक मूल्यों में कमी आ रही है। विवेकानन्द का सबसे पहला प्रयास आध्यात्मिक नवजागरण था।

स्वामीजी पर वेदान्त का काफी प्रभाव पड़ा, उनका जीवन दर्शन वेदान्त तथा उपनिषदों पर टिका हुआ था। वे शंकराचार्य के समान एकवादी दार्शनिक थे। उन्होंने शंकराचार्य के माया–विचार को अपनाया था व अपने दर्शन को तर्कसंगत व व्यवस्थित करने के लिए वेदान्त को आधारशिला माना था।

बौद्ध दर्शन ने भी विवेकानन्द को काफी प्रभावित किया। बौद्ध दर्शन ने सबसे पहले सर्वमुक्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, जिसे विवेकानन्द ने अपनाया। बौद्ध दर्शन के बोधिसत्व व विवेकानन्द के सर्वमुक्ति के सिद्धान्त में काफी समानता देखने को मिलती है। बौद्ध धर्म के मानववादी व परार्थवादी विचार ने भी विवेकानन्द को काफी प्रभावित किया। साथ ही ईसाई धर्म का भी उन पर काफी प्रभाव पड़ा। वे ईसा मसीह के चरित्र, आत्मविश्वास व नैतिकता से काफी प्रभावित थे। ईसाई धर्म के कथन, अत्याचारी को क्षमा कर देना चाहिए, का भी विवेकानन्द पर प्रभाव पड़ा। उनका विचार था कि जो व्यक्ति आध्यात्मिक तपस्या करेगा, वही शारीरिक यातना के बाद भी अत्याचारी को क्षमा करने में समर्थ होगा। ब्रह्म समाज से प्रभावित होकर उन्होंने रूढ़िवाद, अंधविश्वास व धर्म के नाम पर पाखंड का विरोध किया था। विवेकानन्द पर वेदान्त, बौद्ध दर्शन, ब्रह्म समाज, ईसाई धर्म व गीता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। लेकिन उनके जीवन को सबसे अधिक प्रभावित करने वाले रामकृष्ण परमहंस थे।[4]

स्वामीजी अद्वैत वेदान्त के प्रतिपादक थे। वे जीवन्मुक्त महात्मा व ब्रह्मज्ञानी थे, लेकिन इसके बाद भी शक्ति की पूजा किया करते थे। उनका विश्वास था कि ब्रह्मवेत्ता का शरीर धारण करने तक धार्मिक कृत्यों का अनुष्ठान करते रहना चाहिए। अपनी कश्मीर यात्रा के दौरान उन्होंने क्षीर–भवानी के मंदिर में यज्ञानुष्ठान करवाया था। उनके मुसलमान नाविक की चार वर्ष की बालिका थी, वे उमा के रूप में उसकी पूजा किया करते थे। एक ब्राह्मण की छोटी सी कन्या की भी वे उमा के रूप में प्रातःकाल पूजा किया करते थे। उन्होंने कई तांत्रिक अनुष्ठानों को सम्पन्न किया, जिससे उनके शरीर को काफी कष्ट सहन करना पड़ा। उन्होंने मातृरूप में विराटशक्ति की अनुभूति की है। उनका विश्वास था कि यही मातृशक्ति उनके जीवन को संचालित करती है। उन्होंने मातृशक्ति को लक्ष्य मानकर एक कविता भी लिखी व अपने प्रसिद्ध अम्बास्तोत्र में मातृशक्ति की विराट स्तुति की है।

काली के प्रलयकारी शक्ति के रूप को भी स्वामीजी ने एक कविता के माध्यम से मूर्त रूप प्रदान किया है। उनकी एक दूसरी कविता का नाम श्यामा का नृत्य है, जिसमें इसी तरह के भाव व्यक्त किये गये हैं। वे ज्ञान योगी व कर्मयोगी थे। उन्होंने अपने एक ग्रन्थ राजयोग में तांत्रिक शक्ति पूजकों के षट्चक्र का वर्णन किया है। ये छः चक्र इस प्रकार हैं– मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञा। वे तांत्रिकों के समान कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के प्रति विश्वास रखते थे। कुछ विदेशी आलोचकों ने इस शक्ति पूजा का परिहास भी किया है। वे हिन्दुओं के आचार्य थे, इन आलोचकों का उन्होंने कड़े शब्दों में जवाब दिया। सन् 1900 में पेरिस में विश्वधर्म सम्मेलन हुआ था, वहां पर पाश्चात्य विद्वानों को जवाब देते हुए उन्होंने कहा कि लिंग पूजन उपहासास्पद पूजन नहीं है बल्कि यज्ञस्तम्भ पूजन है। जिसमें उन्होंने अथर्ववेद का उदाहरण पेश किया। ईसाईयों द्वारा काली को क्रूर व रक्तपिपासु देवी कहा गया, तब स्वामीजी ने कड़े शब्दों में कहा कि भारत की संस्कृति के प्रसार में यही काली व उमा ईसा मसीह की माता कन्या मैरी के रूप में पूजी जाती हैं।

स्वामीजी का सोचना था कि विदेशियों की आलोचना व आक्रमण से हिन्दुओं की एकता टूट न जाय। वे आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास व स्वमेव मृगतृष्णा के शक्ति योग का समर्थन करते थे। उन्होंने भौतिकवाद के स्थान पर आध्यात्मिक वेदान्त की शिक्षा को व्यवहार में लाने का समर्थन किया। वे अपनी कविताओं व भाषणों के माध्यम से सदियों से पीड़ित हिन्दुओं को शक्ति योग के महामंत्र से दीक्षित करना चाहते थे। जब हिन्दू जाति शक्ति योग की आराधना करेगी, तभी भेदभाव समाप्त होगा और स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण होगा।

स्वामीजी तेजस्वी, सर्वतोमुखी व शक्तिशाली व्यक्तित्व के धनी थे। उनका शरीर गठीला व हृष्ट–पुष्ट था, लेकिन उन्हें स्पिनोजा व प्लोटीनस की तरह रहस्यात्मक अनुभूति थी व उनका परमार्थ ब्रह्म के साथ सामंजस्य था, इसका वर्णन अद्वैतवादी वेदान्तियों द्वारा किया गया है। वे एक मनीषी थे तथा वे आध्यात्मिक वेदान्त के रहस्यों, आधुनिक विज्ञान व

यूरोपीय दर्शन के सिद्धान्तों को अच्छी तरह जानते थे। लोगों के दुःखों को दूर करने के लिए वे सदैव तत्पर रहते थे। बृजेन्द्रनाथ सील द्वारा यह प्रमाणित किया गया है कि स्वामीजी प्रारम्भ से ही परम सत्य से साक्षात्कार करने को बेचैन रहा करते थे। संसार स्वामीजी को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में पहचानता है, जिसमें प्रखर बुद्धि थी। उन्होंने अपनी इच्छा शक्ति को भारत के पुनरूद्धार के लिए समर्पित कर दिया था। वे स्वयं भी कहा करते थे कि उनकी इच्छा होती है कि वे इस समाज पर प्रभंजन की तरह टूट जायें। वे पीड़ितों व दलितों के लिए संघर्ष करने वाले एक योद्धा थे तथा संयास व समाज सेवा का उपदेश दिया करते थे। वे भारतीय इतिहास में व्याप्त अनेक आयामों को काफी गहराई से देखते व समझते थे। उनके हृदय में ऋग्वेद से लेकर कालिदास, काण्ट व स्पेंसर के समय तक की प्रत्येक चीज स्पष्ट व स्वयं प्रकाशित थी। ऐसा प्रतीत होता था कि उनके सर्वतोमुखी व्यक्तित्व में महाभारत काल के शूरवीरों व मौर्यकाल तथा गुप्तकाल के हिन्दू साम्राज्यवाद के प्रवर्तकों के शौर्य तथा वेद व वेदान्त के प्राचीन ऋषि मुनियों के तेज व ज्ञान का सामंजस्य था। इसी कारण स्वामीजी 39 वर्ष की अल्पायु में चमत्कार दिखाने में सक्षम हो पाये।

विवेकानन्द ने यूरोप व अमेरिकी महाद्वीप में विजय यात्रा की और लोगों को दिखा दिया कि हिन्दुत्व के पास शक्ति की कमी नहीं है। शिकागो में सितम्बर 1893 में विश्व धर्म सम्मेलन हुआ। जिसमें विवेकानन्द ने ओजस्वी भाषण दिया और हमारी मातृभूमि के आत्मविश्वास में वृद्धि हुई। वे भारत के सांस्कृतिक विकास को गति देने में सफल हुए।

ईसाई धर्म के प्रचारकों ने हिन्दू धर्म के प्रति कई भ्रान्तियां फैलाई थीं। जिसके द्वारा वे एशिया व अफ्रीका का आर्थिक शोषण करना चाहते थे। स्वामीजी हिन्दू धर्म को सभी धर्मों की जननी के रूप में देखते थे और वैदिक धर्म से लेकर वैष्णव धर्म तक समस्त हिन्दू जाति के प्रतिनिधि के रूप में जाने जाते थे। उनका भरण–पोषण रामकृष्ण के संरक्षण में हुआ। रामकृष्ण का व्यक्तित्व इस बात को प्रमाणित करता था कि समस्त धर्मों में आध्यात्मिक सत्य होता है और एक नैतिक बल होता है, जो लोगों को और देश को शक्तिशाली बनाता है।[5]

स्वामीजी की राजनीतिक विचारधारा– विवेकानन्द को एक वेदान्ती, संयासी, समाज सुधारक और हिन्दू धर्म के प्रचारक के रूप में जाना जाता है। राजनीति से उनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था। जब विवेकानन्द के विचारों का राजनीतिक दलों द्वारा अपने राजनीतिक लक्ष्य को पूरा करने के लिए एक साधन के रूप में उपयोग किया जाने लगा था, तब उनके द्वारा यह बात कही गयी कि उनके विचारों को राजनीतिक रूप न दिया जाय और न ही उनको राजनीति से जोड़कर देखा जाय। इससे पता चलता है कि वे न तो राजनीतिक चिन्तक थे और न ही राजनेता। उन्होंने किसी भी राजनीतिक आन्दोलन का नेतृत्व नहीं किया और न किसी राजनीतिक दर्शन को प्रतिपादित किया।

लेकिन यह बात स्पष्ट है कि उनके भाषणों व विचारों में राजनीति के दर्शन होते हैं। यह राजनीतिक दर्शन उन्हें पाश्चात्य राजनीतिक विचारकों से भी आगे का स्थान प्रदान करता है। आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में उनका स्थान महत्वपूर्ण है। उन्होंने राष्ट्रवाद के आध्यात्मिक स्वरूप का प्रतिपादन किया, लेकिन वह भौतिक पृष्ठभूमि पर आधारित था, क्योंकि उसका निर्माण लोगों की राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक समानता तथा स्वतंत्रता के द्वारा किया गया था। उनके द्वारा जिस आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का प्रतिपादन किया गया, वह भौतिक उत्थान का प्रतिफल ही था। स्वामीजी प्रत्यक्ष रूप से एक राजनीतिज्ञ व राजनीतिक चिन्तक के रूप में हमारे समक्ष नहीं आये, लेकिन फिर भी इस दृष्टि से उनका विशेष महत्व है।

आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के प्रणेता स्वामीजी ने यह अवधारणा प्रस्तुत की कि भारतीय राष्ट्रवाद का उत्थान केवल धर्म के द्वारा ही हो सकता है। अतीत में भारत ने धर्म के द्वारा ही विश्व गुरू के रूप में अपनी पहचान बनाई थी। इस स्थान से भारत का पतन होने का प्रमुख कारण धर्म का लोप होना है। वे मानते थे कि कोई भी राष्ट्र अतीत को भुलाकर महान् स्थान प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए हमारे राष्ट्र का उत्थान धर्म के द्वारा ही हो सकता है।

विवेकानन्द ने राष्ट्रवाद की एक नई अवधारणा का प्रतिपादन किया और राष्ट्र के विकास के लिए भारतवासियों के मन में अतीत की महानता के प्रति स्वाभिमान की भावना जगाने का भी कार्य किया। उन्होंने लोगों को यह सोचने के लिए मजबूर कर दिया कि यदि भारत अपनी आध्यात्मिकता को छोड़ देगा और पश्चिमी सभ्यता को अपनायेगा तो अवश्य ही उसकी स्वतंत्रता को हानि पहुंचेगी। ऐसे राष्ट्र का न कोई स्वाभिमान होगा और न विश्व में उसका कोई सम्मान होगा। विवेकानन्द ने भारतीयों को चेतावनी दी और कहा कि "याद रखो यदि तुमने अपनी आध्यात्मिकता को त्याग दिया और पाश्चात्य भौतिकवादी को अपनाते हुए उसके पीछे भागना प्रारम्भ कर दिया तो तीन पीढ़ियों में तुम्हारी जाति समाप्त हो जायेगी, क्योंकि राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी टूट जायेगी, जिसकी नींव पर राष्ट्र का निर्माण हुआ है, वह हिल जायेगी और उसका परिणाम केवल सर्वनाश होगा।"

उनकी स्वतंत्रता सम्बन्धी अवधारणा में भी राजनीति के दर्शन होते हैं, जो बहुत व्यापक थी। उनके अनुसार वेदान्त

का प्रमुख सिद्धान्त स्वतंत्रता था और मानव का यह कर्तव्य है कि वह मानसिक, आध्यात्मिक व शारीरिक स्वतंत्रता की ओर बढ़ता जाय व दूसरों को भी प्ररित करे। वे मनुष्य की प्रत्येक क्षेत्र में स्वतंत्रता का समर्थन करते थे, जैसे– राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, आन्तरिक, नैतिक, आत्मिक व वाह्य स्वतंत्रता आदि। उनका मानना था कि स्वतंत्रता मानव का प्राकृतिक अधिकार है। जिससे मानव का भौतिक व आध्यात्मिक विकास हो सकेगा।[6]

अपने राजनीतिक चिन्तन में विवेकानन्द ने शक्ति व निर्भयता का संदेश भी दिया। उन्होंने भारतीयों को यह बताने की कोशिश की कि शक्ति के बिना वे अपने अस्तित्व को बचा नहीं सकते और न ही अपने अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं। वे शक्ति को ही धर्म मानते थे और कहते थे मेरे धर्म का सार शक्ति है। जो धर्म हमारे मन में शक्ति का संचार नहीं करता, वह धर्म नहीं है। वे दुर्बलता को पाप समझते थे।

वे जब व्यक्तियों को कमजोर व आलसी देखते तो उनका खून उबल जाता था। वे कहते थे, मैं कायरों को नफरत की नजर से देखता हूं। स्वामीजी के अनुसार राष्ट्र को बनाने में व्यक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। सभी व्यक्तियों को अपनी गरिमा, सम्मान व पुरूषत्व के विकास पर बल देना चाहिए। जब तक व्यक्ति स्वस्थ व नैतिक नहीं होंगे, तब तक राष्ट्र समृद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता। उन्होंने विश्व बन्धुत्व व अन्तर्राष्ट्रीयवाद का समर्थन किया। शिकागो धर्म सम्मेलन में केवल विवेकानन्द ने सभी के धर्म व ईश्वर की बात की, जबकि अन्य देशों के प्रतिनिधि अपने धर्म के बारे में ही बात करते रहे। वे हिन्दू धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानते थे, लेकिन किसी भी धर्म व राष्ट्र की उपेक्षा नहीं करते थे।[7]

विवेकानन्द के प्रभावशाली व्यक्तित्व ने देश में जागृति फैलाई। लोगों के हृदय में राष्ट्र प्रेम, निर्भीकता व आत्मविश्वास की भावना को जगाया, वेदान्तवाद का प्रचार–प्रसार किया व रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। वे एक संयासी थे, उनके मन में लोगों के लिए अपार प्रेम था तथा भारत के कई महापुरूष उनके व्यक्तित्व से प्रभावित थे।

अपने जीवन के अन्तिम दिन विवेकानन्द ने शुक्ल यजुर्वेद की व्याख्या की और यह कहा कि "एक और विवेकानन्द चाहिए यह समझने के लिए कि इस विवेकानन्द ने अब तक क्या किया है।" इस दिन भी उन्होंने प्रातःकाल में 2–3 घंटे ध्यान किया जो उनकी दिनचर्या में शामिल था। ध्यान की अवस्था में ही उन्होंने महासमाधि ले ली। उनको कई बीमारियां थीं। वे निद्रा रोग से पीड़ित थे, उन्हें तीन बार दिल का दौरा पड़ गया था। केवल 39 वर्ष की आयु में 4 जुलाई, 1902 को स्वामीजी का निधन हो गया था। उनका अन्तिम संस्कार गंगा के किनारे किया गया।[8]

निष्कर्ष

विवेकानन्द अपने दर्शन व वेदान्त से आध्यात्म की ओर प्रेरित हुए। जिसे उन्होंने मानव की सेवा के रूप में देखा। वे भारत की संस्कृति को सर्वोच्च स्थान तक ले गये, जिसके द्वारा विदेश के शासन को निराधार कर दिया। भारतीय राजनीति में उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लिया, लेकिन फिर भी उस पर इनके विचारों का प्रभाव देखने को मिलता है। भारत की संस्कृति पर पाश्चात्यीकरण के प्रभाव का उन्होंने हमेशा बहिष्कार किया। उनका कहना था कि पश्चिमी संस्कृति से हमारा विकास नहीं होगा। हमारे देश का आधार आध्यात्मिकरण है।[9] उन्होंने हिन्दू धर्म को सर्वश्रेष्ठ माना तथा एक सामाजिक सुधारक के रूप में समाज में प्रचलित कुरीतियों व बुराईयों का विरोध करके इनको दूर करने का प्रयास किया।

संदर्भ सूचीः–

1. मेहता, जीवन, भारतीय राजनीतिक चिन्तक, एस बी पी डी पब्लिशिंग हाउस, आगरा, पृष्ठ–102, 103
2. डॉ. अवस्थी, ए. पी., भारतीय राजनीतिक विचाारक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृष्ठ–188 से 190
3. गाबा, ओम प्रकाश, राजनीति – चिन्तन की रूपरेखा, मयूर बुक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ–294, 295
4. डॉ. बी. सिंह, गहलोत, समकालीन राजनीतिक विचारक, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ–104, 105
5. डॉ. वर्मा, वी. पी., आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृष्ठ–177 से 183
6. मेहता, जीवन, भारतीय राजनीतिक चिन्तक,एस बी पी डी पब्लिशिंग हाउस, आगरा, पृष्ठ–109 से 112
7. डॉ. अवस्थी, ए. पी., भारतीय राजनीतिक विचारक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृष्ठ–200 से 202
8. https://www.jagranjosh.com
9. गाबा, ओम प्रकाश, राजनीति – चिन्तन की रूपरेखा, मयूर बुक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ–297